तैत्तिरीयोपनिषद् में सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म का समीक्षात्मक विवेचन

[1]डॉ0 सरस्वती कुमारी
[1]सहायक प्राध्यापिका
[1]संस्कृत विभाग
[1]ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश : **ब्रह्मविदाप्नोति परम् वाक्य ही सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या का बीज है। ब्रह्म और ब्रह्म को जानने वाले के स्वरूप का विचार ही तो ब्रह्म विद्या हैं। और ब्रह्म वेत्ता की प्राप्ति ही उसका फल है। अतः यह वाक्य फल सहित ब्रह्म विद्या का निरूपण करने वाला है आगे का ग्रन्थ सूत्राभूत मंत्र की ही व्याख्या करने वाला है। इसमें ब्रह्म का विलक्षण निरूपण करके उसकी उपलब्धि के लिए पंच कोश का विवेचन करने के अभिप्राय से पक्षी के रूपक द्वारा पाँचों कोशों का वर्णन किया गया है। सत्संज्ञक ब्रह्म से जगत कि उत्पत्ति दिखाकर असत् से सत् की उत्पत्ति बताई गयी है। यहाँ असत् का अर्थ अभाव न होकर अव्याकृत ब्रह्म है।**

***IndexTerms* - सत्, असत्, कोश, प्राणमय, ज्ञानमनन्त, ब्रह्म .**

ब्रह्मनिष्ठ की अभय प्राप्ति का निरूपण करके उसके आनन्द का सर्वोत्कृष्टता का वर्णन किया है। इसके पश्चात् हृदय पुण्डरीकस्थ पुरुष का आदित्य मण्डलस्थ पुरुष के साथ अभेद करते हुए यह बताया गया हैं कि जो दोनों का अभेद जानता हैं बह इस लोक अर्थात् दृष्ट—अदृष्ट विषय समूह से निवृत्त होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

ब्रहाविदाप्नोति परम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा बपिचतेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन् आकाशः सम्भूतः।
आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषध्यः। ओषधेभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष। पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।

श्रुति में यह कहा गया है कि ब्रह्म वेत्ता साधक परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। वह ब्रह्म सत्य ज्ञान स्वरूप और अनन्त है। जो साधक परम आकाश में और प्राणियों के हृदय गुहा में सन्निहित उस ब्रह्म को जान लेता है, वह विशिष्ट ज्ञान स्वरूप उस ब्रा के साथ समस्त भोगों का उपयोग करता है। निश्चित ही उस परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश तत्व प्रकट हुआ। तदन्तर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्व उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी से औषधि और औषधियों से अन्न प्राप्त हुआ। अन्न से पुरुष वृद्धि को प्राप्त हुआ। पुरुष निश्चय ही उस अन्न के रस स्वरूप है उसका यह अर्थात् मनुष्य रूपी पक्षी का सिर है। एक बाहु दक्षिण पंख है। दूसरा बाहु वाम पंख हैं। आत्मा मध्य भाग है। ये पैर ही पूँछ और प्रतिष्ठा है।

परमात्मा के स्वरूप बोधक लक्षण

सत्यम्— जो पदार्थ जिस रूप में निश्चय किया गया है। उसमें व्यामचरित — न होने के कारण वह सत्य कहलाता है। चूंकि भगवान में किसी प्रकार का दोष — न होने के कारण वे सत्य है। वे नित्य सत्य हैं, क्योंकि किसी भी काल में उनका अभाव नहीं होता। अतः श्सत्य ब्रह्मश यह वाक्य ब्रह्म को विकार मात्रा से निवृत करता है।

ज्ञानम्— श्ज्ञानश ज्ञाप्ति यानि अवबोध (शिक्षा बोध) को कहते हैं। यह शब्द भाव वाचक हैं। ब्रह्म में अज्ञान का लेश भी नहीं है। अतः वह ज्ञान स्वरूप है।

अनन्तम्— ब्रह्म अनन्त है, क्योंकि वे किसी देश—काल—सीमा से अतीत हैं। अर्थात् सीमा रहित है। जो किसी से भी विभक्त नहीं होता, वह अन्नत है।

परब्रह्म परमात्मा सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त है। इस प्रकार उनके स्वभाव बोधक लक्षण बताये गये हैं। अब उनके प्राप्ति स्थान पर चर्चा की जा रही है। ब्रह्म कहा गया है कि परब्रह्म विशुद्ध आकश में रहते हुये भी सबके हृदय की — गुफा में छिपे हुए हैं। इस गुफा में ज्ञान, ज्ञेय एवं ज्ञात पदार्थ छिपे हुये हैं। — इसलिये श्गुहाश बुद्धि का नाम है। आकाश को भी गुफा कहा गया है क्योंकि सबका कारण एवं सूक्ष्मतर होने के कारण उसमें भी तीनों कालों में सारे पदार्थ छिपे हुए हैं। उसी के भीतर ब्रा भी स्थित हैं। आकाश के तीन भेद बताये गये है। एक जो संज्ञक पुरुष के बाहर है। दूसरा जो पुरुष के भीतर हैं तथा तीसरा आकाश

जो ह्रदय के भीतर है। अर्थात् जो वाह्य इन्द्रियों का विषय है। जिसकी जाग्रत अवस्था में उपलब्धि होती है। इस आकाश में दुरूख की बहुलता होती है, यह हुआ बाहर का आकाश। दूसरा शरीरान्तर्गत आकाश, जहाँ स्वप्न देखने वाले पुरुष को मदन्तर दुरूख होता है। तीसरा ह्रदयस्थ आकाश, जहाँ जीव न तो भोग की इच्छा करता है और न स्वप्न ही देखता है। अतः सुषुप्ति में उपलब्ध होने वाला आकाश सम्पूर्ण दुरूखों का निवृत्त रूप है। इस प्रकार ह्रदयाकाश का परमत्व सिद्ध है, उस ह्रदय आकाश में जो बुद्धि रूप गुहा है, उसमें ब्रह्म निहित हैं। इस संदर्भ में कहा गया है कि जो इन परब्रह्म परमात्मा को तत्व से जान लेता है वह सबको जानने वाले उन ब्रह्म के साथ रहता हुआ सब प्रकार के भोगों को अलौकिक ढंग से अनुभव करता है इस कथन का अभिप्राय यह है कि वह परमात्मा को प्राप्त सिद्ध पुरुष इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों का सेवन करते हुए भी स्वयं सदा परमात्मा में स्थिर रहता है। उसके मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों के व्यवहार, उनके द्वारा होने वाली सभी चेष्टाये परमात्मा में रहते हुए ही होती है। वह किसी समय भी परमात्मा से कभी एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होता।

इस तथ्य का अनुमोदन स्मृति भी करती है। जैसे गीता में उल्लिखित है । मुझमें एकीभाव से स्थित हुआ जो भवतयोगी सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित मेरा भजन करता है। वह सब कुछ बर्ताव करता हुआ भी मुझमें बात कर रहा है। अर्थात् वह नित्य निरन्तर मुझमें ही स्थित है।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्म भूत विद्वान ब्रहा स्वरूप से ही एक साथ सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता हैं और सर्वज्ञ स्वरूप ब्रह्म रूप से ही वह उन्हें भोगता है। उपरोक्त मंत्र के अन्तिम भाग में मनुष्य शरीर की उत्पत्ति का वर्णन करके उसके अंगों की पक्षी के अंगों के रूप में कल्पना की है।

मनुष्य शरीर की उत्पत्ति का क्रम .

सबकी आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा से पहले आकाश तत्व उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु तत्व, वायु से अग्नि तत्व, अग्नि से जल तत्व, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई, फिर पृथ्वी से नाना प्रकार की औषधियाँ, अनाज के पौधे हुए, उन औषधियों से मनुष्यों का आहार अन्न–उत्पन्न हुआ। उस अन्न से यह स्थूल मनुष्य शरीर रूप पुरूष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार क्रमशः मनुष्य शरीर की उत्पत्ति हुई। यह मनुष्य शरीरधारी पुरुष की पक्षी के रूप में कल्पना की गई है। इस मनुष्य का जो सिर है। वह मानो पक्षी का सिर है, उसकी दाहिनी भजा मानो पक्षी का दाहिना पंख है। बायी भुजा पक्षी का बायाँ पंख है। मनुष्य शरीर का मध्य भाग पक्षी के शरीर का मध्य भाग है। मनुष्य शरीर के दोनों पैर मानो पक्षी के पूंछ और पैर हैं।सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रहा की समीक्षा आचार्य ने सत्यादि शब्दों के अर्थों की व्याख्या की है सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म शब्द एक विभक्ति होने से ब्रह्म के विशेषण प्रतीत होते हैं। ब्रह्म विशेष है और सत्यादि विशेषण है। विशेषणों की सार्थकता तभी मानी जा सकती है जब एकजातीय अनेक विशेषण योगी में अनेक द्रव्यों की सत्ता 3 विद्यमान रहती है। आचार्य कहते हैं कि ये विशेषण लक्षण प्रधान है। विशेषण और लक्षण में प्रधान होता है। विशेषण विशेष्य को उसके सजातीय पदार्थों से ही व्यावर्त्तन करनेवाले होते हैं किन्तु लक्षण उसे सभी से व्यावृत कर देता है। अतः ब्रह्म को एक होने के कारण सत्यं ज्ञान ब्रह्म के लक्षण हैं "समानजातीयेभ्य एव निवर्त्तकानि विशेषयस्य, लक्षणं तु सर्वत एव। यथाऽवकाशप्रदातृ आकाशमितिष्सते हितम् इति सत्यम् सत्यत। सत्य का अर्थ है– यथार्थ ठीक, वास्तविक, असल ईमानदार, सच्चा पुण्यात्मा सच्चाई यथर्थता, पारमार्थिक सत्ता, नेकी भलाई, पुण्य सपथ वादा कृतयुग, चार युगों में से पहला सत्ययुग ही है। ऊपर के सात युगो में या सात लोकों में से सबसे ऊँचा लोक ब्रह्म का है जहाँ पर वह रहते हैं। सत्यवचन के चार नाम है– सत्यम् तथ्यम्, ऋतम्, सम्यक, सति साधु सत्यम् श्सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तदतिश।श तथा सत्य साधु सत्यम्। ऋतं शिलोञ्छे पानीये पूजिते दीप्तसत्ययोः इति हैमरू।श सत्य का अर्थ है अपने निश्चित रूप से कथित या कथमपि व्यभिचरित न होनेवाला पदार्थ (यदूपेणर यनिश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति, तत सत्यम् अर्थात् कारण सत्ता ब्रह्म में कारणत्व होने पर मृतिका के समान अतिद्रूपता प्राप्त न हो) श्ब्रह्म ज्ञानश कहलाता है। ज्ञान का अर्थ है– अवबोध, जानाति। ज्ञा–क समास के अन्त में जुड़ता है– ज्ञाता। (पुंस्त्र) मनुष्य बुध सम, आत्मा, ब्रह्मा। ज्ञा धातुसे ल्यूट प्रत्यय करने पर, पहले इत्संज्ञा कर देने पर यू बच जाता है यू का अन् आदेश होकर ज्ञान शब्द बनता है। प्रवीणता सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानम। विद्वान् के 22 नाम है वे हैं– विपश्चित सन् सुधी, कोविद्, बुधः, धीरः, मनीषी ज्ञ प्राज्ञ पण्डितवान् कविधीमान् इत्यादि। इस प्रकार से अनेकों नाम है ज्ञानतो परन्तु कुछ का मैं उल्लेख की हूँ। ये जो नाम है उनमें से कुछ की व्युत्पति यहाँ है (1) विद्वाञ् ज्ञानिनि धीरे विद्वानध्यात्मवेदके इति धरणि। विद्वानात्मविदि प्राज्ञे पण्डिते चाभिधेयवत्।श

इति विश्वः (2) प्रकृष्टं निश्चिनोति चेतति चिन्तयति वा। (3) दोषं जानाति इति कः (4) सन्साधौ धीरस्तयो मान्ये सत्ये विद्यमाने त्रिाषुसाध्व्युमयो स्त्रिायाम् (5) कवि वेदे विदा यस्य विद ज्ञाने च निर्दिष्टा मनीषायां च योषिति। (6) बुधः सौम्ये च पण्डितः धीरो धैर्यान्विते स्वैरे बुधे क्लीबं तु कुकुमे। स्त्रियां श्रवणतुल्यायाम् ज्ञो ब्रह्मबुधविद्वत्सु। प्रशस्त पण्डिते वाच्यलि³्गो बुद्धौ तु योषिति। पण्डः षण्डे धिये स्त्री स्यात्। ज्ञानताऽज्ञानतोवापि,श बुद्धिर्ज्ञानेन शद्ध यति ज्ञाने मौनं क्षम्प शत्रा। सच्चे पदार्थ का ग्रहण करने वाला मन की वृत्तिशास्त्रानुशीलन आदि से 3 आत्म तत्त्व का अवलोकन या अवगम का साक्षात्कार करता हैं।

वेद का वह भाग जिसमें आत्मा व परमात्मा का ज्ञान निहित है जो सत्य ज्ञान सम्पादनार्थ किया जाय वह तपस्या कहलाता है। न्यायशास्त्र के अनुसार अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद है। यह काशी का एक प्रसिद्ध पवित्र स्थल था। भविष्य में कहे जानेवाला कथन या विज्ञान की वस्तु को कहने वाला या जो भविष्य में लिखा रहता है उसे बताने की चेष्टा करने का प्रयत्न करता है। उस धर्म और दर्शन की ऊँची सच्चाईयों पर मनन करने से उत्पन्न ज्ञान मनुष्य अपने बारे में प्रकृति अथवा वास्तविकता से परिचित होने की इच्छा करता है तथा आत्मा व परमात्मा से मिलन की बात करने के बारे में सिखलाता हैं। अन्नता– नास्त्यन्तो यस्यः स अन्नतः –जिसका कभी भी न हो अनन्त कहलाता हैं (बहुस्त्र) जो वस्तु से प्रविभक्त न हो सके वही अनन्त है। इस जैनों के एक तीर्थंकर का नाम अनन्त है। जिसमें एक रेशम का धागा होता है, उसमें 14 गाठे बनी रहती हैं, उसे मनुष्य जाति के दक्षिण भुजा में बाँधा जाता है, उन्हें अनन्त चतुर्दशी के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में भी यह पर्व मिथिला में अधिकांश मनाया जाता है। विष्णु के शय्या शेषनाग, कृष्ण, बलराम, कहानी, बादल शिवनागों के पति, विष्णु अवरक श्रवण नक्षत्र, अन्तरहित निस्गीव, सिंदुवार नामक वृक्ष के वनस्पतियों को खाने का निषेध है जैन तीर्थकर सबको। केशवे शेषे पुमान् निरवधौत्रिषु। अनन्ता च विशल्यायां शारिवादूर्वायोरपि। कणा दुरालभापथ्यापार्वत्यामलकीषु च। विश्वंभरागुडूच्योः स्यादन्तं सुरवर्त्मनि।श यदि ब्रह्मा को कर्ता माना जाएगा तो उसे ज्ञेय तथा ज्ञान से विभाग करना ज्ञान में प्रक्रिया ज्ञाता, ज्ञान तथा ओय की त्रिपुटी सदैव विद्यमान रहती ह। अतः अनन्त होने से ब्रह्म ही ज्ञान है। अतः इस प्रकार ब्रह्म जगत् के कारण ज्ञान स्वरूप और पदार्थान्तर से अविभक्त है।

सरूप लक्षण के अनुसार ब्रह्म सत्य ज्ञान और अनन्त है तथा वह विज्ञान और आनन्दरूप है (विज्ञानमानन्दं ब्रह्म)। उपनिषदों में ब्रह्म की तीन स्वाभाविक शक्तियों का उल्लेख पाया जाता है– ज्ञानशक्ति, बलशक्ति तथा क्रियाशक्ति। सगुण ब्रह्म का तटस्थ लक्षण छान्दोग्योपनिषद् में केवल एक शब्द में किया गया है। वह शब्द है तज्जलान् तज्ज तल्ल तथा तदन्। यह जगत ब्रह्म से उत्पन्न होता है(तज्ज)। उसी में लीन हो जाता है (तल्ल) तथा उसी के कारण स्थितिकाल में प्राण धारण करता है (तदन्)। इस जगत् की उत्पति स्थिति तथा लय के कारणभूत परमतत्त्व को ब्रह्म कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन बड़े सुन्दर शब्दों में किया है। श्जन्माद्यस्य यत%15 सूत्र में ब्रह्म का यही तटस्थ लक्षण उपस्थित किया है। वह सबका अधिपति है, सर्वज्ञ तथा अन्तर्यामी है यह सबका कारण है, उसी से सब जीव उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।ष सगुणब्रह्म इस संसार के शासक है वे इस जगत के समस्त समस्त निवासियों के भाग्य के विधाता हैं। शुभ कार्य करने वाले जीवों का वह कल्याण साघन करते हैं और भुक्ति या मुक्ति का विधान करते हैं परन्तु अशुभ कर्म वाले जीवो को सर्वदा दण्ड देते हैं। ये ईश्वर विराट् या हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तंश ब्रा के अनुसार सत्यस्वरूप, ज्ञानसम्पन्न और अनन्त है। इस वचन में शब्दों का विशेष्यविशेषण भाव सम्बन्ध है। इसमें ब्रह्म है और सत्य ज्ञान अन्नत तीनों विशेषण है। क्योंकि प्रधानतया ज्ञान विषय रूप से विवक्षित है अतरू विशेष्य है? इसी विशेष्य–विशेषण भाव के कारण समान विभक्ति वाले तीनों पद समानाधिकरण हैं। सत्य इत्यादि तीन विशेषणों से युक्त विशेषित होने वाला ब्रह्म अन्य विशेषणों से पृथक् ग्रुप से निश्चय किया जाता है और उसका उसी प्रकार से ज्ञान हुआ करता है जिस प्रकार लोक में नील और विशाल कमल अन्य कमलों से पृथक् ग्रुप से निश्चय किया जाता है। यह विशेषण लक्षणार्थ प्रधान है केवल विशेषण प्रधान नहीं है। विशेषण तो अपने विशेष्य का उसके सजातीय पदार्थों से ही व्यावर्तन करने वाले होते है।

जो पदार्थ जिस रूप में निश्चय किया गया है, उससे न होने के कारण वह सत्य है तथा जो पदार्थ जिस रूप में निश्चय किया गया है उससे व्यभिचरित न होने के कारण वह सत्य है। जैसे मिट्टी से निर्मित घट में मिट्टी ही सत्य है, घट तो वाणी का विकार मात्र है। इस प्रकार सत् ही सत्य है अतः श्सत्यं ब्रह्मश यह कथन ब्रह्म को विकार मात्र से निवृत्त करता है। इस प्रकार मृतिका के समान उसकी जड़ता का प्रस³्ग का उपस्थित हो जाता है। ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहा गया है। ज्ञान का अर्थ है– अवबोध। यहाँ ज्ञान भाववाचक है। उसका सविशेष अर्थात् सगुणरूप एवं निविशेषरूप अर्थात् निर्गुणरूप। परब्रहा सच्चिादान्नदरूप और निरूपाधि

होने कारण अनिवर्चनीय है। उसे ही तैत्तिरीयोपनिषद में सत्य ज्ञानरूप और अन्नतरूप कहा गया है– सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यह ब्रह्म रसरूप है इसे ही प्राप्त का आत्मा आनन्दमय हो जाती है रसः वै सः रसोवाचं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। सविशेष ठीक इसके होता है ।इसमें गुण चिह्न, लक्षण और विशेषणों की सत्ता विद्यमान रहती है, जिसके द्वारा उसका उक्त स्वरूप हृदय३गम किया जा सकता है इन दोनों भावों को प्रदर्शित करने के लिए उपनिषदों ने दो प्रकार की बातों को प्रयुक्त किया है– एक निर्विशेष लि३ग और दूसरा सविशेष लि३ग। यथा "सन्ति उभयलि३गाः श्रुतयो ब्रह्मविषयाः। सर्वकर्मेत्याद्याः सविशेषलि३गाः, अस्थूलमनणु इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलि३गाश्श। (शांकर भष्य)

वेद के एक ही मन्त्र में उभय लि३ग का प्रयोग एक विशिष्ट तत्व का निर्देशक है। यथा ऋऋष्यद् तद् अद्रेश्यमग्राह्यम्, अगोत्रम् अवर्णम् तद् अपाणिपादम् निर्विशेष ब्रह्म की सूचना है नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूयोनि परिपश्यन्ति धीराः।

यहाँ पुल्लिँग पदों में सविशेष ब्रह्म का निर्देश किया गया है।

(क) सगुण ब्रह्म – उपनिषदों में सगुण ब्रह्म करे अपर ब्रह्म कहा गया है सगुण ब्रह्म सविशेष है। प्रमेय है। मन बुद्धि इन्द्रियादि से अगोचर नहीं गोचर है। यह अपर असीम नित्य विभु सर्वज्ञ सर्वनियन्ता तथ विश्व का सर्जक पालक और संहारक है। सोपाधि होने के कारण वर्णनीय है उपनिषद में सगुण ब्रह्म के दो लक्षण बतलाये गये है– तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण। जिसके द्वारा वस्तुके शुद्ध स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जाता है वस्तु के तात्विक रूप की उपलब्धि होती है। तटस्थ लक्षण के द्वारा वस्तु के अस्थयी परिवर्तनशील गुणों का वर्णन किया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में सगुण बहा का विवेचन जला।श शब्द के द्वारा किया गया है। तज्ज तत्। ज या समस्त राति उसी नाहा से उत्पन हुई है। सगुण ब्रह्म ही इस संसार का उत्पादक धारक एवं संहारक है। जिससे सभी प्राणि उत्पन्न होते है, जीवित रहते हैं और उसी में लीन हो जाते है वही सगुण ब्रह्म है। इस तरह सगुण ब्रहा ही संसार का कारण है। वही सबका स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वही इस गाग–रूपतामक जगत् का अधिष्ठाता है वही संसार का नित्य और उपादान कारण है। वही सगुण बाहा जगत नियन्ता है।

(ख) निर्गुण ब्रहा– यह ब्रहा ही सचिदानन्द है। यह निरूपाधि होने के कारण अनिवर्चनीय है। निर्गुण ब्रह्मा को किसी विशेष गुण से निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि ऋषि वाष्कल ने ब्रह्मा के सम्बन्ध में अपने गुरु से अनेक बार जानना चाहा परन्तु मौन के अतिरिक्त उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला

वाष्कलिना बांध्वः पृष्टः सन बचनेनैव ब्रहा पोवाचेति श्रुयते। स होवाच अधीहि भो इति। स तुष्णी बभूव। तंह द्वितीये वा तृतीये वचन उवाचश ब्रूमः खलु त्वंतु न विजानासि। उपशान्तोऽगमात्मा।"

गुणों के अत्यन्ताभाव के कारण ब्रहा का भावात्मक वर्णन नहीं हो सकता– स एष नेति नेति आत्मा अर्थात् आदेशो भवति, नेति नेति, न ह्येतस्तात् अन्यत् परमस्ति। जिस प्रकार कोई बड़ा गारी मत्स्य नदी के पूर्व और अपर दोनों तीरों पर क्रमशः विचरण करता है उसी प्रकार यह पुरूप स्वप्न स्थान और जागरित स्थान इन दोनों ही स्थान पर विचरण करता है, जिस प्रकार इस आकाश में न (बाज) अथवा सुपर्ण (तेज उड़नेवाला बाज) सब ओर उड़ थक जाने पर पंखों को फैला कर घोंसले की ओर ही उड़ता है, उसी प्रकार यह पुरुष इस स्थान को ओर दौड़ता है जहाँ सोने पर यह किसी भोग की इच्छा नहीं करता और न कोई स्वप्न ही देखता है। निर्गुण ब्रहा न स्थूल, सूक्ष्म, हस्व, दीर्घ, रक्त, व, छाया, तम, वायु, आकाश, स३ग, रस, प्राण, मुख है।श निर्गुण ब्रहा अलक्ष्य, अपाहा, अनोज, अवर्ण, अचक्षुष्क, विना हाथ– पैर का है। जब साधक के हृदय में ब्रह्म को साक्षात् करने की तीव्र अभिलाषा जाग उठती है तब भगवान् उसको उत्कण्ठा को और भी तीव्रतम तथा उत्कृष्ट बनाने की लिये बिजली चमकाने और आँखों के झपकने की भाँति अपने स्वरूप की झाँकि दिखलाकर छिप जाया करती हैं। देवर्षि नारद को भी उनके पूर्वजन्म में क्षण भर के लिये अपनी दिव्य झाँकी दिखलाकर भगवान् अन्तर्धान हो गये थे। यह कथा के उल्लेख में मिलता है। जब साधक के नेत्रों के सामने या उसके हृदय–देश में पहले पहल भगवान के साकार निराकार स्वरूप का दर्शन या अनुभव होता है तब वह आनन्द और आश्चर्य से चकित–सा हो जाता है इससे उसके अपने हृदय में आराध्यदेव को नित्य–निरन्तर देखते रहने, अनुभव करते रहने की अनिवार्य एवं परम उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। उसे थोड़े समय के लिए इष्ट साक्षात्कार के बिना शान्ति नहीं मिलती। सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वव्यापी परमेश्वर प्रकाश स्वरूप है समस्त प्राणियों के अत्यन्त समीप उन्हीं के हृदय रूप गुह्य में छिपे रहने के कारण ही ये

गुहाचार नाम से प्रसिद्ध है। जितने भी हिलने चलने वाले श्वास लेने वाले और आँख मूंदने वाले प्राणी हैं उन सबका समुदाय इन्हीं परमेश्वर में समर्पित है। सबके आश्रस ये परमात्मा है। ये सत् और असत् अर्थात् कार्य और अकार्य कारण एवं प्रकट और प्रकट सब कुछ हैं। सबके द्वारा वरण करने योग्य अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा समस्त प्राणियों की बुद्धि से परे अज्ञेय है। जो परब्रह्मा परमेश्वर देदीप्यमान हैं जो सूक्ष्मों से भी अतिशय सूक्ष्म हैं जिनमें समस्त लोक और उन लोकों में रहने वाले समस्त प्राणी स्थित है ये सब जिनके आश्रित हैं, वे ही परम अक्षर ब्रह्म हैं वे ही सबके जीवन दाता प्राण हैं वे ही सबके वाणी और मन अर्थात् समस्त जगत् के इन्द्रिय और अन्तरूकरण रुप में प्रकट हैं। वे ही परम सत्य और अमृत अविनाशी तत्त्व हैं। समस्त प्राणियों के प्राण और शरीर का नियमन करने वाले ये परमेश्वर मन में व्याप्त होने के कारण मनोमय कहलाते हैं और सब प्राणियों के हृदय कमल का आश्रय लेकर अन्नमय स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित है। बुद्धि मान मनुष्य विज्ञान द्वारा उन परब्रह्म को प्रत्यक्ष कर लेते हैं जो आनन्दमय अविनाशी रुप से सर्वत्र प्रकाशित है। दोनों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है दोनों एक ही ब्रह्म के दो दृष्टिकोण है। अनेक स्थलों के समान पृष्ठ भूमि में ब्रह्म के उभयविध वर्णन मिलते हैं।

श्वेताश्वरोनिषद् में एक ओर उसे सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी कर्माध्यक्ष तथा साक्षी – कहा गया है तो दूसरी ओर उसे निर्गुण कहा गया है एको देवो सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासाः साक्षी चेता केवलो निर्णगुणस्य ।। वेदों में सब विद्या है क्योंकि जितनी विद्या संसार में है वे सब वेदों से ही निकली है।

पंचकोश की समीक्षा

ब्रह्म का विलक्षण निरूपण करके उसकी उपलब्धि के लिए पंच कोश का विवचन करने का अभिप्राय से पक्षी के रूपक द्वारा पाँचों कोशों का वर्णन किया गया है।

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। या कश्च पृथिवीश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सवौंषध्मुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यते इति। तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तरआत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविधरू एव। तस्यपुरुषविध्तामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।

पृथ्वी लोक का आश्रय लेकर रहने वाले जो कोई भी प्राणी हैं वे सब अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। फिर अन्न से ही जीते हैं और अन्त में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अतः अन्न ही सब भूतों में श्रेष्ठ है। इसलिए ये सर्वोषध रूप कहलाता है। जो साधक अन्न की ब्रह्म भाव से उपासना करते है। वे अवश्य समस्त अन्न को प्राप्त कर लेते है। क्योंकि अन्न ही भूतों में श्रेष्ठ है। इसलिए ये सवौंषध नाम से कहा जाता है। अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर अन्न से ही बढ़ते हैं। वह प्राणियों द्वारा खाया जाता है तथा स्वयं भी प्राणियों को खाता है। इसलिए श्अन्नश इस नाम से जाना जाता है। निश्चय ही, उस अन्न रसमय मनुष्य शरीर से भिन्न उसके भीतर रहने वाला प्राणमय पुरुष है। उससे यह अन्न रसमय पुरुष व्याप्त है। यह प्राणमय आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार का हैं। उस अन्नमय आत्मा पुरुष तुल्य आकृति में अनुगत (व्याप्त) होने से ही पुरुष के आकार का है। उस प्राणमय आत्मा का प्राण ही सिर है। व्यान दाहिनी पंख है, अपान बायाँ पंख है। आकाश शरीर का मध्य भाग है और पृथ्वी पूँछ एवं आधार है। उस प्राण के महिमा के विषय में बताया जाने वाला यह श्लोक है इस– अनुवाक के अन्तिम भाग में प्राणमय शरीर (प्राणमय कोश) एवं अन्नमय शरीर (अन्नमय कोश) का वर्णन किया गया है।

पूर्वोक्त अन्न के रस से बनें, स्थूल शरीर से भिन्न उस स्थूल शरीर में रहने वाला एक और शरीर है जिसको ष्प्राणमयश भी कहा जाता है। उस प्राणमय से अन्नमय शरीर पूर्ण है। अन्नमय शरीर स्थूल की अपेक्षा प्राणमय शरीर सूक्ष्म होने के कारण यह अन्नमय शरीर के अंग–अंग में व्याप्त है। अतः इसी कारण से प्राणमय शरीर पुरुष के आकार का ही है। यह स्वतः पुरुषाकार नहीं हैं। प्रत्युत् अन्न रसमय पुरुषाकार के अनुरूप साँचे में ढली हुई प्रतिमा के समान यह प्राणमय कोष भी पुरुषाकार है। प्राणमय शरीर (प्राणमय कोश) की पक्षी के रूप में कल्पना की गई है, जैसे–जिस प्रकार शरीर के अंगों में मस्तक श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पाँचों प्राणों में मुख्य प्राण ही श्रेष्ठ है। अतः प्राण की उसका सिर है। व्यान उसका दाहिना पंख है। अपान बायाँ पंख है। आकाश शरीर का मध्य भाग है। क्योंकि आकाश में रैली वायु की भाँति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त ष्समान वायुश आत्मा है। यह सम्पूर्ण शरीर में समान भाव से रस पहुँचाकर प्राणमय शरीर को पुष्ट करता है। पृथ्वी पूँछ एवं आधार है, क्योंकि अपान वायु को रोककर रखने वाली पृथ्वी की आधिदैविक शक्ति ही इस प्राणमय पुरुष का आधार है। इस मंत्रा से लेकर पाँचवें मंत्रा में ईश्वर से पंचभूतों की उत्पत्ति तथा

मनुष्य की काया में समव्याप्त पाँच कोशों का वर्णन किया गया हैं। मनुष्य की काया में समाहित उन सभी कोशों का आकार स्थूल काया के अनुरूप ही होता है। मनुष्यों को पक्षी मानकर उसके सिर, पंख मध्य भाग एवं मूंछ की संगति बिठाते हुए पाँचों कोशों का वर्णन किया गया हैं।

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्याः पशुश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेतत् आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मातसर्वायुषमुच्यते इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य एजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणरू पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा।. अथर्वाग्रिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति

जो–जो देवता, मनुष्य एवं पशु आदि प्राणी है। वे प्राण का अनुशरण करके ही चेष्टा करते हैं अर्थात् जीवित रहते हैं। क्योंकि प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए यह प्राण सबका आयु कहलाता है। यह समझकर जो–जो प्राण स्वरूप ब्रह्म की उपासना करते हैं वे निरूसंदेह समस्त आयु को प्राप्त कर लेते है। उसका यही शरीर में रहने वाला अन्तरात्मा है। जो पहले वाले अन्न रसमय शरीर (अन्नमय कोश) की अन्तरात्मा है।

यह निश्चय है कि इस प्राणमय पुरुष से भिन्न उसके भीतर रहने वाला मनोमय आत्मा (पुरुष) (मनोमय कोश) उस मनोमय शरीर में यह प्राणमय शरीर व्याप्त है। वह यह मनोमय शरीर निश्चय ही पुरुष के आकार का ही है। उसकी पुरुष तुल्य आकृति में अनुगत (व्याप्त) होने से ही यह मनोमय शरीर पुरुष के आकार का है। उस मनोमय पुरुष का यजुर्वेद ही मानो सिर है। ऋग्वेद मानो दाहिना पंख है। सामवेद बायाँ पंख है। आदेश (विधि वाक्य) शरीर का मध्य भाग है। अथर्वा और अंगिरा ऋषि द्वारा देखे गये अथर्ववेद के मंत्र ही पूँछ एवं आधार है। उसकी महिमा के विषय में भी यह आगे कहा जाने वाला श्लोक है।

ब्रह्मानन्दवल्ली के तीसरा अनुवाक के प्रथम भाग में प्राण की हेमा का वर्णन किया गया है।

प्राण की महिमा

जितने भी मनुष्य, देवता, पशु आदि शरीर धारी प्राणी हैं, वे सब प्राण के आधार पर ही जीवित हैं। प्राण के बिना किसी के शरीर का कोई अस्तित्व ही नहीं हैं। प्राण के बिना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं कर सकता है। प्राण ही सबका जीवन है, सबकी वायु है। प्राण केवल परिच्छिन्न रूप से अन्नमय कोश से ही आत्मवान नहीं है। प्रत्युत् मनुष्यादि जीव उसके अन्तर्वर्ती सम्पूर्ण पिण्ड में व्याप्त प्राणमय कोश से भी आत्मवान हैं। सबकी आयु होने के कारण प्राण को ष्सर्वायुषष कहा जाता है क्योंकि प्राण–प्रयाण के अन्नतर मृत्यु हो जाना प्रसिद्ध ही है। प्राण की उपासना एवं फल अतः जो लोग इस वाह्य असाधारण व्यावृत रूप से अर्थात् बाँटे हुये अन्नमय कोश से आत्म बुद्धि को हटाकर इसके अन्तर्वर्ती (सम्पूर्ण इन्द्रियों में अनुगत अर्थात् व्याप्त) प्राणमय कोश अर्थात् प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना करते हैं वे इस लोक में पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रारब्ध वश प्राप्त हुई आयु से पूर्व अपमृत्यु से नहीं मरते।

प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न के ग्यारहवें मंत्रा में भी कहा गया है कि श्जो मनुष्य इस प्राण के तत्व को जान लेता है, वह स्वयं अमर हो जाता है – और उसकी प्रजा नष्ट नहीं होतीष जो सर्वात्मा परमेश्वर अन्न से रस से बने हुए – स्कूल शरीरधारी पुरुष का अन्तरात्मा है वही उस प्राणमय पुरुष का भी शरीरान्तवर्ती अन्तर्यामी आत्मा है। इस अनुवाक के अन्तिम भाग में मनोमय कोश का वर्णन किया जा रहा है।

मनोमय शरीर (मनोमय कोश) का वर्णन

पिछले अनुवाक में श्प्राणमयश पुरुष (प्राणमय कोश) का वर्णन किया जा चुका है। उस प्राणमय पुरुष (प्राणमय कोश) से भिन्न दूसरा पुरुष हैं, उसका नाम मनोमय है। श्प्राणमयश से भी सूक्ष्म होने के कारण मनोमय से प्राणमय शरीर पूर्ण हैं, क्योंकि यह प्राणमय शरीर में सर्वत्रा व्याप्त है। यह प्राणमय का अन्तर्वर्ती आत्मा हैं। उक्त दूसरे अन्तरात्मा श्मनोमयश को मनोमय क्यो कहा जाता हैं? यह समझने योग्य हैं। संकल्पात्मक एवं विकल्पात्मक, अन्तरूकरण का नाम श्मनश है। इसके तद्रूप होने के कारण इसे श्मनोमयश कहते हैं। जैसे अन्त रूप होने के कारण अन्नमय कहा जाता है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि यह प्राणमय पुरुष में अनुगत है, (व्याप्त है) इसलिए यह मनोमय शरीर भी पुरुष के आकार का ही है। उसकी पक्षी के रूप में इस प्रकार कल्पना की गयी है। –ष्उस मनोमय पुरुष का मानों यजुर्वेद ही सिर है, ऋग्वेद की दाहिना पंख है, सामवेद बायाँ पंख है, आदेश (विधि वाक्य) मानो शरीर का मध्य भाग है तथा अथर्वा एवं अंगिरा

ऋषियों द्वारा देखे हुए अथर्ववेद के मंत्रा ही पूँछ एवं आधार है। उक्त वर्णन से अधिकांश साधकों के मन में एक शंका उत्पन्न होती है कि वेदों को मनोमय शरीर का अंग बताने का क्या तात्पर्य हैं। इस शंका का समाधान भगवान शंकाराचार्य ने अपने भाष्य में बड़े ही वैज्ञानिक एवं युक्तियुक्त ढंग से किया है वे कहते हैं कि– षजिनमें अक्षरों की कोई नियत संख्या न हो तथा जिनमें पाद–पूर्ति का कोई नियम न हो ऐसे मंत्रों का नाम श्यजश है। ऐसे मंत्र के अन्त चाह श लगाकर आहुति दी जाती है। यहा आदि में यजुर्वेद के मंत्रों की हो प्रधानता है। अंगों में सिर भी प्रधान हैं, अतः यजुर्वेद को सिर बताया गया ।

वेद मंत्रों के वर्ण, पद एवं वाक्य आदि के उच्चारण के पहले मन में संकल्प उठता हैं संकल्पात्मक वृत्ति के द्वारा मनोमय पुरुष के साथ वेद मंत्रों का घनिष्ठ संबंध हैं। अतः इन्हें मनोमय पुरुष के ही अंगों में स्तवन एवं गायन होता है। चूंकि यह यजुर्वेद के मंत्रों की अपेक्षा अप्रधान है। अतः इनको भुजाओं का रूप दिया गया है। आदेश (विधि) वाक्य वेदों के मध्य में है, अतरू इसको मनोमय पुरुष के अंगों का मध्य भाग कहा जाता है। अथर्ववेद को पूँछ एवं प्रतिष्ठा कहा गया है। क्योंकि इस वेद के मंत्र शान्ति एवं पौष्टिक कर्मो के साधक मंत्र माने जाते हैं। उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वेद मंत्रों का मनोमय पुरुष के साथ संकल्पनात्मक वृत्ति के द्वारा इन सबके साथ नित्य संबंध है। अतः वेदों को मनोमय पुरुष का अंग कहना उचित नहीं ही हैं।

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।

जहाँ मन से सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट आती है। उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला पुरुष कभी भय नहीं करता। उस मनोमय पुरुष का भी परमात्मा शरीरान्तर्वर्ती आत्मा है जो पहले बताये हुए अन्न रसमय शरीर या प्राणमय शरीर का है। निश्चय ही उस पहले बताये हुए मनोमय पुरुष से अन्य इसके भीतर रहने वाला आत्मा विज्ञानमय है। उस विज्ञानमय आत्मा से यह मनोमय शरीर व्याप्त है। वह यह विज्ञानमय आत्मा निरूसंदेह पुरुष के आकार का ही है। उसकी पुरुष कृति में अनुगत होने से ही यह विज्ञानमय आत्मा पुरुष के आकार का बताया जाता है। उस विज्ञानमय आत्मा का श्रद्धा ही सिर है, सदाचार का निश्चय दाहिना पंख है, सत्य भाषण का निश्चय बायाँ पंख हैं। ध्यान द्वारा परमात्मा में एकाग्रता रूप योग ही शरीर का मध्य भाग हैं। श्महश नाम से प्रसिद्ध परमात्मा ही पूँछ एवं आधार हैं। उस विषय में भी यह ऊँ का श्लोक हैं। मनोमय कोश की महिमा जिस ब्रह्म के आनन्द की अनुभूति में मन के साथ वाणी भी असमर्थ रहती है। वह मनोमय शरीर अपने परवर्ती प्राणमय शरीर की आत्मा है। अर्थात् आधार है। क्योंकि ब्रह्म को पाने के लिए साधन करने वाले मनुष्य को यह ब्रह्म

तति ना मिला पावणालग, मसलालगा, नगा तस्य पुरुपनिषतागत रुपनि। तरंग जैव शिरः। दक्षिणरू द्य सत्यगुत्तररू पाः। गोग जागा। गहरू पुपतिनातदारोष श्लोको वति ।

जहाँ मन से सहित वाणी जानि इन्द्रियों उसे न पाकर लौट आती है। उस बहा के आनन्द को जानने वाला पुरुष की गय नहीं करता। उस मनोमय पुरुष का भी परमात्मा शरीरान्त आत्मा है जो पहले बताये हुए अन रसमय शरीर या प्राणमय शरीर का है। निश्चय ही उस पहले बताये हुए मनोमय पुरुष से अन्य इसके भीतर रहने वाला आत्मा विज्ञानमय है। उस विज्ञानमय आत्मा से यह श्मनोमय शरीर व्याप्त है। वह यह विज्ञानमय आत्मा निरूसंदेह पुरुष के आकार का ही है। उसकी पुरुष कृति में अनुगत होने से ही यह विज्ञानमय आत्मा पुरुष के आकार का बताया जाता है। उस विज्ञानमय आत्मा का श्रद्धा ही सिर है, सदाचार का निश्चय दाहिना पंख है, सत्य भाषण का निश्चय बायाँ पंख हैं। ध्यान द्वारा परमात्मा में एकाग्रता रूप योग ही शरीर का मध्य भाग हैं। श्महश नाम से प्रसिद्ध परमात्मा ही पूँछ एवं आधार हैं। उस विषय में भी यह □ का श्लोक हैं। मनोमय कोश की महिमा जिस ब्रह्म के आनन्द की अनुभूति में मन के साथ वाणी भी असमर्थ रहती है। वह मनोमय शरीर अपने परवर्ती प्राणमय शरीर की आत्मा है। अर्थात् आधार है। क्योंकि ब्रह्म को पाने के लिए साधन करने वाले मनुष्य को यह ब्रह्म ऋतु अर्थात् सनातन सत्य उसका दाहिना पंख हैं, सत्य प्रत्यक्ष, सत्य सका बायाँ पंख हैं, ध्यान द्वारा परमात्मा के साथ संयुक्त रहना अर्थात् योग उसका मध्य भाग है और श्महःश (व्याहति) ब्रह्म का स्वरूप नाम होने के कारण विज्ञानमय शरीर का पूंछ और आधार हैं। क्योंकि परमात्मा ही जीवात्मा का परम आश्रय है क्योंकि कारण ही कार्य वर्ग की प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हुआ करता है। महत्तत्व ही सम्पूर्ण बुद्धि के सम्पूर्ण विज्ञानों का कारण है। इसलिए यह विज्ञानमय आत्मा की प्रतिष्ठा है।

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रहा ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्पनो हित्वा। सर्वान्कामान्समश्नुत इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः। तेनैषः पूणर्रू। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषाविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोदो उत्तर पक्षः। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।

विज्ञान ही यज्ञों का विस्तार करता है और कर्मों का भी विस्तार करता है। सव इन्द्रियरूप देवता सर्वश्रेष्ठ ब्रहा के रूप में विज्ञान की सेवा करते हैं। यदि कोई विज्ञान को बहा रूप से जानता है और यदि उससे प्रसाद नहीं करता, उस निश्चय से की विचलित नही होता तो शरीराभिमानजनित पाप समुदाय को शरीर ही छोड़कर समस्त भौगों का करता है। इस प्रकार यह श्लोक है उस विज्ञानमय का यह परमात्मा ही शरीरान्तर्वर्ती आत्मा है।

निश्चय ही उस पहले कहे हुये इस विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न इसके भी भीतर रहने वाला आत्मा आनन्दमय परमात्मा है, उससे यह विमानमय पर्णतः व्याप्त है। वह यह आन्नदमय परमात्मा भी पुरुष के समान आकार वाला ही है। उस विज्ञानमय की पुरुषाकारता है अनुगत होने से ही यह आनन्दमय परमरत्मा पुरुषाकार कहा जाता है। उस आनन्दमय का प्रिय ही सिर है। मोद दाहिना पंख है, प्रमोद बायाँ पंख है, आनन्द ही शरीर का मध्य भाग है। ब्रह्म ही पूँछ एवं आधार है। उसकी महिमा के विषय में भी यह श्लोक है। विज्ञानात्मा की महिमा एवं उसकी उपासना का फल बुद्धि के साथ तय हुआ विज्ञानात्मा (जीवात्मा) ही श्रद्धादिपूर्वक यज्ञ अर्थात् शुभ कर्मो का अनुष्ठान करके उनका विस्तार करता है। जीवात्मा से ही सम्पूर्ण कर्मों का प्रेरणा मिलती है, अतः अनेकानेक लौकिक कर्मो का भी सम्पूर्ण कर्मों की प्रेरणा मिलती है, अतः अनेकानेक लौकिक कर्मो का भी विस्तार करता है। सम्पूर्ण देवगण अर्थात् इन्द्रियाँ एवं मन उस विज्ञानमय जीवात्मा की ही सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के रूप में सेवा करते हैं तथा अपनी–अपनी वृत्तियों के द्वारा इसी को सभी प्रकार से सुख पहुँचाने का सतत प्रयत्न करते हैं। जो साधक इस विज्ञानात्मा को ब्रह्म स्वरूप में जानते हैं उसी प्रकार के चिन्तन में सर्वदा रत रहते हैं तो वे इसी शरीर में अनेकानेक जन्मों में संचित पर्ण कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करते है अर्थात मारत पापों से मुक्त होकर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि प्राप्त दिव्य भोगों का अनुभव करते हैं। के भी अन्तर्यामी आत्मा वे ही परब्राहा परमेश्वर है जो उस विज्ञानमय के भी अन्तर्यामी आत्मा की अन्नमय कोश) प्राणमय कोश एवं मनोमय कोश के है। कला का पापणा अनुवाक के उत्तरार्थना वर्णन किया जाता है।

आनन्दमय परम पुरुष (आनन्दगय कोश) का वर्णन

मामय जीवात्मा से भिन्न उसके अन्दर रहने वाला जो एक अन्य आत्मा है वहीं आनन्दमय परमात्मा है यही विज्ञानमय पुरुष में पूर्ण रूप से व्याप्त है। बृहदारण्यक उपनिषद् के 3–7–23 मंत्र में भी कहा गया है कि परमात्मा ही जीवात्मा रूप शरीर का अन्तरात्मा है तथा उसका शासन करने वाला है। वे विज्ञानमय पुरुष के समान आकार वाले हैं। वे विज्ञानमय पुरुष में व्याप्त होने के कारण पुरुषाकार कहे जाते हैं। इस प्रकरण में विज्ञानमय का तात्पर्य जीवात्मा से और आनन्दमय का परमात्मा से है।

आनन्दमय परमेश्वर के अंगों की कल्पना पक्षी के रूपक में की गई है। जो इस प्रकार हैं– प्रिय भाव को उनका सिर बताया गया है। क्योंकि आनन्दमय परमात्मा सबके प्रिय है और सभी आनन्द चाहते है। षप्रियताश उन आनन्दमय परमात्मा का एक प्रधान अंश है। अतः इसको उनका प्रधान अंग सिर मानना उचित हैं। श्मोदश को दाहिना पंख कहा गया हैं। प्रिय पदार्थ की प्राप्ति से होने वाला हर्ष मोद कहलाता है। प्रमोद को बायाँ पंख कहा गया है। प्रिय पदार्थ की मय का प्राप्ति से होने वाला हर्ष जब आप वाला हर्ष जब अधिक मात्रा में बढ़ जाता है। तो वही श्प्रमोदश मात्मा का मध्य अंग आनन्द है। जिस समय अन्तरूकरण तमोगुण को नष्ट करने वाले तप, उपासना, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा के द्वारा जिनता जिनता वा को प्राप्त होता है। उतने ही स्वच्छ एवं प्रसन्न हुये उस अन्तरूकरण में नियोष आनन्द का उत्कर्ष होता है। वह आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग होता है जो प्रकृति (विकार रहित) ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और आनन्द रूप है, जिसकी प्राप्ति के लिये पाँच कोशों का उपन्यास (विचार) किया गया है। जो उन सबकी भोला अन्तर्वर्ती है और जिसके द्वारा वे बस आत्मवान हैं। वह ब्रह्म ही उस आनन्दमय की पूँछ एवं प्रतिष्ठा है, अर्थात् आधार है।

उरोक्त वर्णन में जो पक्षी के रूपक में आनन्दमय परमेश्वर के अंगों की जो कल्पना की है, इस संदर्भ में स्वाभाविक रूप से एक शंका उत्पन्न होती है कि वेदों एवं शास्त्रों में परमात्मा को अवयव रहित कहा गया है, तो कर उनके अंगों की कल्पना का क्या औचित्य? इसका समाधान ब्रह्मसूत्र के 3–3–12 से 3–3–14 तक के सूत्रों में स्पष्ट रूप से किया गया है। वहाँ कहा गया हैं कि । ब्रह्म के विषय में ऐसी कल्पना केवल उनकी उपासना की सुगमता के अभिप्राय

से की गई है। प्रत्युत् इसका दूसरा प्रयोजन नहीं हैं।

सदसद् ब्रह्म विचार

असनेव स भवति। असद्ब्रोति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति। (पहला भाग)

यदि कोई ब्रह्म नहीं है, इस प्रकार समझता है तो वह असत ही हो है और यदि ब्रह्म हैं, इस प्रकार मानता है, तो उसको ज्ञानीजन सत पुरुष समझते हैं। तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य। (दूसरा भाग) उस आनन्दमय का भी यही शरीरान्तर्वर्ती आत्मा है जो पहले वाले विज्ञानमय का है। अथातोऽनुप्रश्नाः। उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती आहो विद्वान, लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता। (तीसरा भाग) यहाँ से अनुप्रश्न आरम्भ होते हैं। ब्रह्म को न जानने वाला कोई पुरुष मरकर परलोक में जाता है। अथवा कोई भी ज्ञानी मरकर उस लोक को प्राप्त कर लेता है।

सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपस्तप्वा इद सर्वमसृजत यदिदं किंच। तत्सृष्ट्रा। तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्त च। निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किंच। तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति।।(चौथा भाग)

उस परमेश्वर ने विचार किया है कि मैं प्रकट होऊँ और उनके नाम रूप धारण करके विलुप्त हो जाऊँ। इसके बाद उसने तप किया अर्थात् अपने संकल्प का विस्तार किया। उसने इस प्रकार संकल्प का विस्तार करके जो कुछ भी यह देखने और समझने में आता है, उस समस्त जगत की रचना की। उस जगत की रचना करने के अनतर वह उसी में साथ–साथ प्रविष्टा हो गया। उसमें साथ–साथ प्रविष्ट होने के बाद, वह स्वयं ही मूर्त एवं अमूर्त हो गया, बताने में आने वाले और न जाने वाले तथा आश्रय देने वाले तथा आश्रय न देने वाले तथा चेतनायुक्त और जड़–पदार्थ तथा सत्य और झूठ इन सबके रूप में भी वह सत्य स्वरूप परमात्मा ही हो गया। जो भी यह दिखाई देता है और अनुभव में आता है वह सत्य ही है। इस प्रकार ज्ञानीजन कहते हैं, उस विषय में भी वह श्लोक हैं। ऋऋ ब्रह्म की सत्ता को न मानने वाले एवं सत्ता को मानने वालों के विषय में चर्चा की गई है। उसको जानकर प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वाभाविक ही प्रश्न उठ सकते हैं, जैसे इस मंत्र में श्अनुवाकश शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ होता है ष्वे प्रश्न जो आचार्य के उपदेश के अनन्तर किस शिष्य के मन में उठते है। अथवा जिन्हें वह आचार्य के सामने रखता है।ष – पहला प्रश्न– यदि ब्रह्म है तो उनको न जानने वाला कोई भी मनुष्य मरने के बाद परलोक में जाता है अथवा नहीं? – दूसरा प्रश्न– ब्रह्म को जानने वाला कोई भी विद्वान मरने के बाद परलोक को प्राप्त होता है, अथवा नहीं? उक्त प्रश्नों के उत्तर में श्रुति ब्रह्म के स्वरूप और उनकी शक्ति का वर्ण प्रस्तुत करती है। ब्रा को सत् और असत् जानने वाले की क्या स्थिति होती है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया हैं, कि जिस प्रकार असत् (अविद्यमान) पदार्थ पुरुषार्थ से संबंध रखने वाला नहीं होता, उसी प्रकार वह मनुष्य जो ब्रह्म को असत् मानता है। अर्थात अविद्यमान मानता है श्असत्श हो जाता है। इसके विपरीत से . मनुष्य जो ब्रह्म के यथार्थ तत्व को न जानते हुए भी शास्त्र एवं महापरुष श्सतश समझते हैं ऐसे मनुष्य परमात्मा के तत्वज्ञान की पहली सीढ़ी रूप सत्ता में . विश्वास के सहारें कभी न कभी उनको प्राप्त कर ही लेते हैं। (पहला भाग) पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार आनन्दमय का अन्तरात्मा स्वयं आनन्दमय को . ही बताया गया है। पहले बताये हुये अन्न रसमय, अन्न प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय आदि के जो अन्तर्यामी परमात्मा हैं वे स्वयं ही अपने अन्तर्यामी है। उनका अन्तर्यामी अन्य कोई नहीं।

सर्ग के आदि में परब्रह्म परमात्मा ने अनेक रूपों में प्रकट होने की कामना की। अतः उन्होंने जीवों के कर्मानुसार सृष्टि उत्पन्न करने के लिए तप किया। अर्थात संकल्प किया और देखने, सुनने और समझने में जो कुछ भी आता है। उस जड़ चेतनमय सम्पूर्ण जगत की रचना की। यद्यपि अपने से ही उत्पन्न इस जगत में वे परमेश्वर व्याप्त थे तथापि अपने विशेष स्वरूप अर्थात अपने अन्तर्यामी स्वरूप का बोध कराने के लिये वे परब्रह्म परमेश्वर स्वयं भी उसमें प्रविष्ट हो गये। तदन्तर देखने में आने वाले पृथ्वी, जल, तेज तथा दिखाई न देने वाले वायु एवं आकाश भूतों के रूप में प्रकट हो गये। इसी प्रकार वर्णनीय–अवर्णनीय, आश्रय देने वाले और न देने वाले चेतन और जड़ इन सबके रूपों में परमेश्वर अनेकानेक नाम और रूप धारण करना होगा। १ सत्य स्वरूप परमात्मा ही सत्य और झूठ रूपों इसलिए सम्पूर्ण जगत और कुछ नहीं, प्रत्युक्त वे सत्य स्वरूप परमात्मा हैं। वास्तव में ब्रह्म हैं या नहीं? इस शंका का समाधान ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन करके किया गया हैं।

असद्वा इदमन आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्समान स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतामुच्यत इति।(पहला भाग)। यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को झोवान्यात्वकः प्राण्याद दवैष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति। (दूसरा

भाग)। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठा विदन्ते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमनं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति।।

होने से पहले यह जड़ चेतनात्मक जागृत अव्यक्त रूप में ही था। उससे सत् अर्थात् नाम रूपमय जगत उत्पन्न हुआ है। उसने अपने को स्वयं उस रूप में प्रकट किया हैं। इसलिए वह सुकृत कहा जाता है। निश्चय ही जो वह सुकृत है। वहीं रस हैं, क्योंकि यह जीवात्मा उस रस को प्राप्त करके ही आनन्द युक्त होता हैं। यदि यह आकाश की भांति व्यापक, आनन्द स्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता, और कौन पाण की क्रिया (चेष्टा) कर सकता। निरूसंदेह यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता हैं।

क्योंकि जब कभी यह श्जीवात्मा इसे देखने में जाने वाला शरीर, बतलाने में न आने वाले, और दूसरा का आश्रय लेने वाली पाबा परमाता निर्भरता पूर्वक स्थिति स्थिति लाग करता है तो वह निर्णय पद को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि जब तक यह थोड़ा–सा भी इस परमाता से वियोगिता है। जब तक उसको जन्म–मृत्यु भय प्राप्त होता है तथा वही यवल को ही नहीं अभिमानी, शास्त्रज्ञ विद्वान को भी अवश्य होता है। स्थल एवं सूक्ष्म रूप में प्रकट होने से पहले यह जड़ चेतन सम्पूर्ण जगत असत् ही था। अर्थात् अव्याकृत ब्रह्म ही था। उसी श्सत् अर्थात, नाम रूपात्मक व्यक्त की उत्पत्ति हुई। चूँकि उसने अपने से ही अपने को रचा। अतरू उसे सुकृत (रचा हुआ) कहते हैं। उसे सुकृत कहने का कारण और भी है। सबका कारण होने से स्वयं ब्रह्म सबका कर्ता हैं। दूसरें सर्वभूत होने से ब्रह्मा ने स्वयं ही इस सम्पूर्ण जगत की रचना की। ... ब्रह्म की आनन्द रूपता के संदर्भ में कहा जाता है कि वह निश्चय रस ऋऋ ही है। रस कहते हैं–खट्टा–मीठा आदि तुष्टिदायक और आनन्दप्रय–पदार्थ। ब्रहा चूँकि रस रूप होने के कारण तृप्तिदायक एवं आनन्दप्रद है। अतरू अनादि काल से जन्म–मृत्यु रूप घोर दुरूखों का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा इस समय ब्रह्म हो पाकर ही पूर्णानन्द, नित्यानन्द, अखण्डानन्द और अन्नत आनन्द का अनुभव करता है। । उक्त तथ्य से उस वास्तविक स्वरूप परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। क्योंकि उन आकाश की भांति व्यापक आनन्द स्वः परमात्मा के सहारे ही सब जीते हैं। चेष्टा करते हैं वे ही, सबके जीवन निर्वाह की सुव्यवस्था क्योंकि जब कभी यह जीवात्मा इसे देखने में न आने वाले शरीर, बतलाने में न आने वाले, और दूसरों का आश्रय नारी निर्भरता पर्वक स्थिति स्थिति लाभ करता हैं तो वह निर्भय पद को प्राप्त हो झ जाता है। क्योंकि जब तक यह थोड़ा–सा भी इस परमात्मा से वियोग किये रहता है। जब तक उसको जन्म–मृत्यु भय प्राप्त होता हैं तथा वही भय केवल मूर्ख को ही नहीं अभिमानी, शास्त्रज्ञ विद्वान को भी अवश्य होता है। स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में प्रकट होने से पहले यह जड़ चेतन सम्पूर्ण जगत असत् ही था। अर्थात् अव्याकृत ब्रह्म ही था। उसी सत् अर्थात् नाम रूपात्मक व्यक्त की उत्पत्ति हुई। चूँकि उसने अपने से ही अपने को रचा। अतरू उसे सुकृत (रचा हुआ) कहते हैं। उसे सुकृत कहने का कारण और भी है। सबका कारण होने से स्वयं ब्रह्म सबका कर्ता हैं। दूसरें सर्वभूत होने से ब्रह्म ने स्वयं ही – इस सम्पूर्ण जगत की रचना की। के ब्रह्म की आनन्द रूपता के संदर्भ में कहा जाता है कि वह निश्चय रस ही है। रस कहते हैं–खट्टा–मीठा आदि तुष्टिदायक और आनन्दप्रय–पदार्थ। ब्रह्म – चूँकि रस रूप होने के कारण तृप्तिदायक एवं आनन्दप्रद है। अतः अनादि काल से जन्म–मृत्यु रूप घोर दुरूखों का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा इस समय ब्रह्म हो पाकर ही पूर्णानन्द, नित्यानन्द, अखण्डानन्द और अन्नत आनन्द का के अनुभव करता है।

उक्त तथ्य से उस वास्तविक स्वरूप परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। क्योंकि उन आकाश की भांति व्यापक आनन्द स्वः परमात्मा के सहारे ही सब जीते हैं। चेष्टा करते हैं वे ही, सबके जीवन निर्वाह की सुव्यवस्था, है। जगत की सभी भातिक क्रिया का नियमित एवं व्यवस्थित करते हैं। आनन्द स्वरूप वें ही एक परमात्मा है। जो सबको, इस मंत्र के इस भाग में परमात्मा में आत्मभाव प्राप्त करने का फल साया जा रहा है। जिस समय भी कोई साधक ब्रह्म में अविचल स्थिति प्राप्त कर लेता है, उनमें आत्म भाव प्राप्त कर लेता है उस समय वह न तो कुछ और देखता है, न कुछ सुनता है और न कुछ जानता ही है। तब वह निर्भयपद को प्राप्त हो जाता है। वास्तव में अन्य को ही अन्य से भय होता है। आत्मा से आत्मा को नहीं, अतः आत्मा ही आत्मा के अभय का कारण है। ब्रह्म किन विशेषणों से युक्त हैं? इस संदर्भ में कहा गया है कि व अदृश्य हैं, अनिरुक्त अर्थात् व्याख्या रहित हैं, अलिनयन हैं, अर्थात् उनका कोई निलयन (आश्रय) नहीं हैं, यानी अनाश्रय हैं। अनात्म्य हैं अर्थात शरीर रहित है। वह ब्रह्म अभय का हेतुभूत हैं।

ब्रह्मानन्दवाली के सातवाँ अनुवाक में दूसरे प्रश्न (कि ब्रह्म को जानने वाला कोई भी विद्वान करने के बाद परलोक को जाता है या नहीं?) के उत्तर में यह बात कही गई है कि जब तक मनुष्य परमात्मा को पूर्णतया नहीं जान लेता, उनमें थोड़ा सा भी अन्तर रखता है तब वह जन्म मरण के भय से नहीं छूटता। तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य ब्रह्म में थोड़ा–सा भी अन्तर रखता है तो उस – आत्मा के भेद दर्शन रूप कारण से उसे भय होता है। भेददर्शी विद्वान के लिये यह ब्रह्म ही भेद रूप है श्भयश का तात्पर्य है पुनर्जन्म को प्राप्त होना। संक्षेप में कह सकते हैं कि जब तक परमात्मा में पूर्ण स्थिति नहीं हो जाती अथवा जब तक भगवान का निरन्तर स्मरण नहीं हो जाता है।

<u>ब्रह्मात्मैक्य दृष्टि की समीक्षा</u>

स यश्चयं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। स य एवंविदस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति।

वह परमात्मा जो यह मनुष्य में और जो वह सूर्य में भी हैं वह सबका अन्तर्यामी एक हैं। जो इस प्रकार जानने वाला हैं वह इस लोक से विदा होकर इस अन्नमय आत्मा को प्राप्त हो जाता है, इस प्राणमय आत्मा को प्राप्त होता है। इस मनोमय आत्मा को प्राप्त होता हैं। इस आनन्दमय आत्मा को प्राप्त होता हैं। आनन्द के एक मात्र केन्द्र अन्तर्यामी, जो मनुष्यों एवं सूर्य में भी व्याप्त है, उन परमानन्द स्वरूप परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है, वह इस लोक से जाते समय अर्थात् मरने पर अन्नमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है। वह इस प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय को भी प्राप्त कर लेता हैं। क्योंकि जो सर्व अन्तर्यामी परमात्मा अन्नमय में व्याप्त था, वह इन सबमें भी व्याप्त है।

इसलिए इन सब में परिपूर्ण, पूर्णरूप, सबके आत्मा, परम आत्मा स्वर परब्रह्म को प्राप्त हो जाना ही इस फल श्रुति का तात्पर्य है। यहाँ यार योग्य बात यह है कि केवल पृथ्वी सम्पत्ति आदि से उस आनन्द को सम्भव नहीं। उसके लिए समय मागतला होना नाति श्रेष्ठ से श्रेष्उत्तर आनन्द का उल्लरन नाया गया। साभार हैं कि वह आनन्द उसी का प्राप्त हो सकता जोमाता कामनाओ से दूषित नहीं है। पानी हो जोन, नित्य ही मनाला है, श्रेष्ठ आनन्द तक पहुँचता ही नहीं चाहता। जिस लाल नीवित जीभ स्वादिष्ट व्यंजनों का रस नहीं ले सकती, तर मन अतरूकरण श्रेष्ठ आनन्द की अनुभूति नहीं कर पाता।

तन्नम इत्युपासीत। नम्यन्तेऽसौ कामाः। तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तबहाणः परिमर इत्युपासीत। पर्येणं नियन्ते द्विषन्तः सपतारू। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश्चयं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः।

वह परमात्मा जो इस मनुष्य में है तथा जो सूर्य में भी है। यह दोनों का अन्तर्यामी एक ही है। जो मनुष्य इस प्रकार तत्व से जानने वाला है। वह इस लोक अर्थात् शरीर से उत्क्रमण करके अनमय आत्मा को प्राप्त होकर इस प्राणमय आत्मा को फिर मनोमय आत्मा को प्राप्त होकर तदुपरान्त विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त होकर अन्त में आनन्दमय आत्मा को प्राप्त होकर इच्छानुसार भोग वाला और इच्छानुसार रूप वाला हो जाता है तथा इन सन लोकों में विचरता हुआ, इसके आगे बताये हुए श्साम अर्थात् समतायुक्त उद्गारों का गाय करता है। पामा जिनका वर्णन सबका उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण किया जा चुका है तथा जो परमानन्द स्वरूप हैं एवं मनुष्य तथा सूर्य में जो साधक इस प्रकार दोनों में एकत्व को जानता है। वह इस लोक न शरीर से उत्क्रमणकर अन्नमय आत्मा को प्राप्त होता है। फिर पुनः प्राणमय आत्मा को प्राप्त होकर फिर मनोमय औ र आत्मा को तदुपरान्त आनन्दमय आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

उक्त प्रकार से स्थित बताकर प्राप्त होने वाले फल का वर्णन किया जा रहा है। पुरुष एवं आदित्य में स्थित आत्मा के एकतत्व ज्ञान के फल स्वरूप कोशों के प्रति संक्रमण अर्थात् अतिक्रमण कर उस अदृश्यादि धर्म वाले स्वाभाविक आनन्द स्वरूप अजन्मा, अमृत, अभय, अद्वैत एवं सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म को प्राप्त होकर इच्छित भोग और रूप को प्राप्त करता है। फिर उस सबसे अभिन्न रूप श्सामश का, गान करता हुआ अर्थात् लोकों पर अनुग्रह करने के लिये आत्मा की एकता को प्रकट करता हुआ स्थित रहता है।

स य एवंवित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्राम्य। – एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य। – एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य। – एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य। इमॉल्लोकान्कामानी कामरूप्यनुसंचरन्। एतत्साम गायन्नास्ते।

वह महापुरुष कहता है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि वे सम्पूर्ण भोग वस्तएं इनका भोवता जीवात्मा और इन दोनों का संयोग कराने वाला परमेश्वर एक मैं ही हूँ। मैं ही सत्य ज्ञानी मूर्ता–मूर्त रूप जगत का प्रथम उत्प वाला हिरण्यगर्भ हूँ। मैं ही

देवताओं से पहले होने वाला और अमत का नाभि यानी अमरत्व का केन्द्र स्थान हूँ। अर्थात् प्राणियों का अमरत्व मेरे में स्थित है। अर्थात वे परमेश्वर मैं ही हूँ। जो कोई मनुष्य किसी भी वस्तु के रूप में मुझे किसी को प्रदान करता है, वह मानो मुझे देकर मेरी रक्षा करता है। इसके विपरीत जो अपने ही लिये अन्न रूप होकर निगल जाता हैं। अर्थात उसका विनाश हो जाता है, उसकी भोग सामग्री टिकती नहीं। मैं समस्त ब्रह्माण्ड का तिरस्कार करने वाला हूँ। मेरी महिमा की तुलना में यह सब तुच्छ है। जगत में जितने भी प्रकाश युक्त पदार्थ हैं। वे सब मेरे ही तेज के अंश हैं।

संदर्भ सूची :

- तैत्तिरीयोपनिषद्, शंकरभाष्य सहित, गीताप्रेस
- गीता 6–31
- मेदिनी ११
- हैम २६१६१
- अमरकोष
- मनु 1/7
- रघु 1/22
- मेदिनी. ६०७८१–८३
- वृहदारण्यकोपनिषद्, शंकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2050[.../१८
- कठोपनिषद्, शर्मा विजेन्द्र कुमार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1984